[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3425

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

विभिन्न कालान्तर्गत तत् वाद्यों में अधुनातन प्रयोग

ऋचा उपाध्याय
शोधार्थी(संगीत), नेट (जे. आर. एफ.),
वनस्थली विद्यापीठ

भारतीय संगीत में अनेक प्रकार के तत् वाद्यों की परम्परा आदिकाल से चली आ रही है । आदि मानव ने अपनी रुचि एवं बुद्धि के आधार पर कलात्मक विविध तत् वाद्यों की नींव ही नहीं डाली वरन् उनका उपयोग कर मानव जीवन को भौतिक धरातल से ऊँचा उठाकर कला को दिव्य तथा आलौकिक धरा पर लाकर प्रतिष्ठित कर दिया । तत् वाद्यों की श्रेणी में किये गये प्रयोगों के माध्यम से ही संगीत के सिद्धान्तों ,श्रुति, स्वर, सप्तक, एक स्वर से दूसरे स्वर की दूरी, मूर्छ्च्ना पद्धति आदि को प्रमाणित व निष्चित किया जा सका । आज भी इसमें निरंतर अधुनातन प्रयोग किये जा रहे हैं, जिस प्रकार से प्रत्येक वस्तु में समयांतराल के साथ–साथ परिवर्तन दृष्टिगत होता है। उसी प्रकार से तत् वाद्यों में भी समयांतराल के साथ–साथ आधुनिक परिवर्तन दृष्टिगत होते हैं। जिसे हम वादन विधि में अधुनातन प्रयोग के रुप में देख सकते हैं। कलाकारों के प्रस्तुतिकरण के तरीके में परिवर्तन के रुप में देख सकते हैं। इनके अतिरिक्त वाद्य की बनावट, प्राचीन वाद्यों के स्थान पर नवीन वाद्यों का प्रयोग तथा तन्त्री वाद्यों के विभिन्न अंगों में भी देख सकते हैं। इन सब विषयों में से मैने अपने षोध पत्र में तन्त्री वाद्यों के विभिन्न अंगों जैसे – तबली, तूम्बा, घोडी, (जवारी), तंत्रियाँ, सारिका, खूटियाँ, आदि में अधुनातन प्रयोग की विस्तृत व्याख्या की है जो निम्नवत है–

तूम्बों में अधुनातन प्रयोग– तत् वाद्यों में यदि तूम्बे को देखें तो तत् वाद्य के कुछ प्रकारों को छोड़कर सभी में तूम्बा देखने को मिलता है। विश्व के सभी तत् वाद्यों में तूम्बे (तूम्बा, तूम्बा) का विशेष स्थान है। वाद्यों के अनुसार इनके भी आकार में परिवर्तन होता रहता है तथा ये विभिन्न पदार्थ के भी हो सकते हैं जैसे– कई वाद्यों में यह हिस्सा लकड़ी, प्लाईवुड, धातु का भी होता है। यदि प्राचीन काल से आज तक के तूम्बे पर ध्यान दें तो हमें पहने वर्ग में तूम्बे वाले तत् वाद्य– एक तारा, तानपुरा, सितार , दुसरे वर्ग में तूम्बे वाले तत् वाद्य– सितार, सरोद, रूद्र वीणा, विचित्र वीणा, तीसरे वर्ग में तूम्बे वाले तत् वाद्य– किन्नरी वीणा, चौथे वर्ग में मानव निर्मित तूम्बे वाले वाद्य हैं जैसे– तबली, भारतीय वॉयलिन, ये तूम्बे लौकी, कद्दू के नहीं बने होते हैं ये तूम्बे दोनों तरफ से चपटे होते हैं।

भारतीय संगीत के तंत्री वाद्यों की श्रेणी में तूम्बे का प्रथम प्रमाण ''सूत्र–काल'' में प्राप्त होता है। ''इससे पहले **''आरण्यक–काल''** में भी तूम्बे का उल्लेख आया है, जिसे 'अम्भण' कहा गया है। सर्वप्रथम ''वाण'' तूम्बा रहित था। परिणाम स्वरूप इसमें नाद की तीव्रता कम थी।''[1]

सूत्रकाल में ही ऋषियों ने खोज कर वैज्ञानिक नियम की स्थापना की कि कोई तरंगित वस्तु यदि किसी बर्तन पात्र या खोखली वस्तु के ऊपर रख दी जाए तो उसकी ध्वनि की तीव्रता बढ़ जाती है। ''नाट्यशास्त्र'' में कच्छपी वीणा के रूप में तूम्बा युक्त वीणा प्राप्त होती है। इसके लगभग 200 ई.पूर्व से लेकर 1200 ई. तक के समय में पायी जाने वाली मूर्तियों में जितनी वीणाएँ प्राप्त होती हैं सब तूम्बे युक्त हैं। इसके पश्चात 13 वीं शताब्दी में किन्नरी वीणा का आगमन हुआ जिसमें परदे थे तथा ये तीन तुम्बे युक्त थीं जिसके अविष्कारक मतंग मुनि थे। 17 वीं शताब्दी में ''रामेश्वरम्'' मंदिर में उकेरी गई प्रतिमा में देख सकते हैं, उसके हाथ में किन्नरी वीणा है जिसके डाँड में तीन तूम्बे लगे थे। 18 वीं शताब्दी में राधा–गोविन्द संगीत सार'' में ''प्रताप सिंह देव'' ने दो प्रकार के तम्बूरे का वर्णन किया है।''तानपूरे का अस्तित्व सामने आ चुका था और सितार का भी। ''आजकल सितार के डाँड के पीछे छोटा तुम्बा लगा दिया गया वास्तविकता यह है कि इसके लगाने या निकालने से नाद की तीव्रता में कोई अंतर नहीं आता इसका प्रयोजन इसे रखने में आसानी व लुढ़कने से बचाना ।

तूम्बे में अधुनातन प्रयोग–''वर्तमान समय में परम्परागत श्रेणी के दो ही वाद्य हैं। जिनमें दोनों में दो तुम्बे का प्रयोग होता है, रूद्र वीणा, विचित्र वीणा। तानपूरे के दो प्रकार के तूम्बे का प्रयोग होता है। स्त्रियों के गाने के लिए– 40 से 45 वृत्त लगभग होता है। पुरूषों हेतु का तूम्बा– 55 से 60 इंच होता है। आज दो तरह के तूम्बे अधिक चलते हैं। कलकत्ता का तूम्बा– कलकत्ता के तूम्बे कागजी व पतले होते हैं आवाज भी अच्छी होती है लेकिन ये काफी हल्के व पतले होते हैं जिनके ठोकर खाकर टूट जाने की आशंका रहती है।दूसरे महाराष्ट्र के जिला मिरज के गॉव पतरपुर के– ये तानपूरे मजबूती की दृष्टि से

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

अधिक अच्छे होते हैं। इनके तूम्बे कलकत्ता के तूम्बे से आधा सूत मोटे होतेहैं। ऐसे तत् वाद्यों, जिनमें तूम्बा संलग्न रहते हैं, ये ध्वनि माधुर्य की दृष्टि से अपनी आकृति के अनुसार बदलाव ग्रहण करते हैं।[4]

तन्त्रियों में अधुनातन प्रयोगμ''वैदिक युग से आधुनिक युग तक तन्त्री–वाद्यों में प्रयुक्त होने वाली तन्त्रियों के विकास का भी एक सुन्दर इतिहास है। उपलब्ध वैदिक सामग्री से पता चलता है कि उस काल में मूँज तथा दूब की तन्त्रियां बनायी जाती थीं। इन तन्त्रियों के बजाने की विधि का पता नहीं चलता जिससे उक्त प्रकार की ध्वनियों को इस समय सुन पाना सम्भव नहीं है। उसके बाद तन्त्रियों के निर्माण के लिए दो अन्य वस्तुओं का प्रयोग आरम्भ हुआ–रेशम का धागा तथा जानवरों के बाल, बालों में घोड़े की पूँछ के बाल प्राचीन काल में सर्वोपरि समझे जाते थे। इन दोनों प्रकारो की तन्त्रियों में जानवरों के बालों से बनी तन्त्रियों की ध्वनि मधुर तथा गूँज युक्त थी, किन्तु उनकी यह गूँज गज के वाद्यों में ही अधिक होती थी। घोड़े के बालों से कमान तथा बालों को ही तन्त्री रूप में प्रयुक्त होते हुये आज भी रावण–हत्था वाद्य में देखा जा सकता है जानवर के बालों के प्रयोग के बाद जानवरों की खालों से तन्त्रियों का निर्माण प्रारंभ हुआ। इन तंत्रियों को ताँत कहा जाता था। तन्त्री के रूप में प्रयुक्त होने वाली खालों में बकरे की खाल, सर्वश्रेष्ठ समझी जाती थी। आज भी सारंगी, सरिन्दा आदि में ताँत का प्रयोग देखा जा सकता है। ताँत के प्रयोग के बाद धातुओं में लोह, पीतल, ताँबे तथा चाँदी के तारों को अधिक महत्व प्राप्त हुआ।''[5] पहले के समय में तार एक समान प्रयोग में आते थे। केवल इन्हें छोटा बड़ा कर आवाज में भिन्नता लाई जाई जाती थी किन्तु आधुनिक समय में तारों के अलग–अलग नम्बर से उनकी मोटेपन, पतलेपन से उसमें भिन्नता लाई जाती है। जो सारंगी वाद्य के रूप में स्पष्ट है।

सितार के प्रारम्भिक रूप में तीन तारों का प्रयोग होता था, जिन्हें म, सा, अथवा म, सा, प में मिलाया जाता था। बाद में ''मसीत खाँ'' जी ने दो तार और जोड़ दिये जिसमें एक तार जोड़ी का दूसरा पंचम का था। सन् 1871 में दिल्ली में 6 तारों वाले सितार का वर्णन मिलता है। बाजू, खरज (दो तार) पंचम, लरज, पपीहा।[6] चिकारी के लिए ''पपीहा'' की संज्ञा प्रयुक्त की गई है। ''रहीम बेग'' द्वारा लिखित ग्रन्थ'' तहसील–अल–सितार'' (1874) में आठ तारों वाले सितार का भी वर्णन मिलता है।[7] 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कोलकाता में छः तार वाले सितार का ही प्रचलन था। सन् 1900 तक 5 मुख्य तथा दो चिकारी व तरब के तार सर्वमान्य थे। 1950 तक सितार में 8 तार लगने लगे। परन्तु यह संख्या एवं व्यवस्था अधिक समय प्रचलित नहीं रही।[8]

पहले के समय में सितार में तार पतले प्रयुक्त होते थे। सर्वप्रथम एक नं. का तार लगता था, फिर दो और अब तीन नं का बाज का तार लगता है। आज कल के कलाकार मोटे तारों का प्रयोग करते हैं। पहले के समय में देशी तार प्रयोग किये जाते थे। परन्तु वो जल्दी टूटती थीं एवं उनमें सारिकाओं के स्थान पर निशान पड़ जाते थे। 1955–56 के लगभग भारत में विदेशी तारों का आगमन हुआ। वर्तमान समय में बीन में जर्मनी की तारों का प्रयोग होता है।[9]

.डाँड में अधुनातन प्रयोग–''सर्वप्रथम मनुष्य ने ''पोही बाँस'' का प्रयोग किया होगा। बाँस का जीवन काल के अल्प होने के कारण डाँड फट जाते हैं जिससे बेसुरापन आ जाता है। कालान्तर से बांस के स्थान टीक की लकड़ी का प्रयोग होने लगा हैं टीक की लकड़ी के डाँड के प्रयोग से डाँड में पहले जैसी खराबियाँ नहीं आती हैं व डाँड अधिक दिन तक चलता है तथा इसकी आवाज भी पहले से अच्छी हो गई।[10] ''असद अली खाँ'' के अनुसार यह परिवर्तन 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हुए क्योंकि उनके पिता ''सादिक अली'' के पास जो वीणा थी, उसमें बांस के स्थान पर टीक की लकड़ी का डाँड लगा हुआ था।[25] वर्ष 1930 के लगभग कोलकाता के वाद्य निर्माता नित्यानंद ने कुछ विशिष्ट औजारों का अविष्कार किया जो नक्काशी व लम्बी डाँड को पोला करने सहायक थे।उस्ताद असद अली खाँ ने रूद्र–वीणा की ध्वनि बढ़ाने के लिए कुछ प्रयोग किए, जो निम्नलिखित हैं।1. वीणा के डाँड को डेढ़ इंच किया है। परिणामतः गूँज बढ़ी। 2. आपकी वर्तमान वीणा कोलकाता की बनी है। इसमें अपेक्षाकृत एक इंच बड़े तूम्बे हैं जिससे ध्वनि की गहराई में फर्क आया है।[11]

आज के समय में डाँड के लिए मुख्य रूप से शीशम, तुन, टीक जैसी लकड़ी का प्रयोग होता है। आज तुन की लकड़ी की डाँड सबसे अच्छी मानते हैं । [12]

परदे पर अधुनातन प्रयोग –परदों के विषय में ऐतिहासिक रूप से देखा जाए तो इनका अस्तित्व काल 13 वीं शताब्दी माना जाता है। इससे पूर्व की वीणाओं में परदे नहीं पाए जाते थे। 13 वीं शताब्दी में सर्वप्रथम किन्नरी वीणा का आगमन हुआ, जो कि परदेयुक्त थी। इस वीणा का अविष्कार मतंग मुनि ने किया। इसका सर्वप्रथम विस्तृत वर्णन ''मानसोल्लास'' में मिलता है। इनके सिवा ''संगीत सार, संगीत रत्नाकर'' में भी इनका उल्लेख प्राप्त होता है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

सर्वप्रथम परदे धातुओं के बनते थे जिनको मोम की सहायता से स्थापित किया जाता था। किन्तु आज स्टील के परदे देखने को मिलते हैं। कुछ वाद्यों में परदे लकड़ी के होते हैं जिन्हें लॉक से स्थिर कर देते हैं। परदों को 'सार' या 'सुन्दरी' या ''सारिका'' आदि नाम से जानते हैं।[13] कुछ परदे जर्मन धातु के होते हैं जिन्हें धागों से बांधकर स्थापित करते हैं। पहले के समय में परदे चौड़ाई में चपटे होते थे किन्तु वर्तमान समय में गोलाई के लिए उठे हुए होते हैं। कारण परदों के चपटे होने के कारण मींड का काम नहीं हो पाता था। आधुनिक समय में परदे की गोल व उठे होने के कारण कम से कम 5 स्वर की मींड एक साथ खींची जा सकती है।
परदों की संख्या कलाकार अपनी शैली व परम्परा के अनुसार भिन्न–भिन्न रखते है। जैसे–

1. ''उस्ताद मुश्ताक अली खाँ'' एवं उनकी शिष्य परम्परा में 17 परदों का सितार प्रचलित है।
2. विष्णुपुर घराने के ''पं. मणी लाल नाग'' अपने सितार में 20 परदों का प्रयोग करते हैं। इनके सितार में कोमल रिषभ के लिए अतिरिक्त परदे लगे हैं। इसके अतिरिक्त परदे से ये 'भैरवी' जैसे राग में कॉर्ड्स, हारमनी का प्रयोग सरलता से कर सकते हैं।

ब्रिज में अधुनातन प्रयोग –मेरे विचार से मनुष्य ने सर्वप्रथम लकड़ी के टुकड़े की ब्रिज बनाई होगी। किन्तु तार की बार–बार के खिंचाव से वह टूट गई हो गयी होगी। तब उसे किसी ठोस वस्तु की आवश्यकता पड़ी होगी। जैसी हड्डी। आज के समय में हाथी दाँत, बारहसिंघा के सींग तथा ऊँट की हड्डी से बने ब्रिज उत्तम माने जाते हैं। ये मजबूती की दृष्टि से उचित हैं। आधुनिक समय में हाथीदांत और बारासिंघा दोनों का प्रयोग अपराध है। आधुनिक समय में काली जवारी बैकलाईट सामग्री से बन रही है और उसके अच्छे परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। पहले के सितार में चपटे ब्रिज लगाए जाते थे। जिनकी जवारी करना कठिन था। आधुनिक वाद्य–निर्माताओं एवं सितार वादकों ने जवारी की ध्वनि के आधार पर तीव्र तीन श्रेणियों में बनाई है– खुली जवारी, बन्द जवारी, गोल जवारी। पहले के सितारों या तन्त्री वाद्यों में खुली जवारी का ही प्रचलन था।[35] किन्तु आज अलग–अलग कलाकार अलग तरह की ज्वारी करवाता है। जैसे– पं.रविषंकर जी खुली जवारी बजाना पसंद करते हैं । उस्ताद विलायत खां जी बंद जवारी पसंद करते हैं।

3. **खूंटियॉ :** खूँटी भी तन्त्री वाद्य का आवश्यक अंग है इसमें बांधकर वाद्य में तार लगाए जाते हैं। प्राचीनकाल की प्रत्येक वीणा से लेकर आज तक के आधुनिक काल के विभिन्न तत् वाद्य जैसे वायलिन, सितार, सरोद आदि सभी में खूंटियॉ होती है। ''श्री दुलाल कांजी'' के अनुसार पहले के समय में आबनूस की लकड़ी की खूंटिया बनती थी।[36]खूंटियों को बनाने के लिए आजकल शीशम, टाली की लकड़ी का प्रयोग करते हैं। मुम्बई की शीशम की लकड़ी अच्छी मानी जाती है। इसका रंग काला होता है।[16]

परम्परागत तत् वाद्यों से प्रभावित एवं विकसित वाद्यों में कलाकारों की प्रयोगधर्मिता

इस क्षेत्र में किए गए नवीन प्रयास निम्नलिखित हैं–

उस्ताद अलाउद्दीन खाँ द्वारा निर्मित वाद्य : 1. चन्द्र सारंग, 2. सितार बैंजो, 3. सारंग ।[17]
उस्ताद मम्मन खाँ द्वारा निर्मित वाद्य : 1. सुरसागर ।[18]
बाबूलाल गन्धर्व द्वारा निर्मित वाद्य : 'बेला बहार'।
सास्किया के द्वारा चैलो वाद्य का भारतीयकरण। [19]
पं. विश्व मोहन भट्ट द्वारा नवनिर्मित वाद्य 'विश्व वीणा' :
पं. राधिका मोहन मोइत्रा द्वारा निर्मित वाद्य : 1 मोहन वीणा 2 . दिलबहार , 3. नवदीपा ।[20]
वाद्य निर्माता श्री बिशनदास शर्मा द्वारा निर्मित तंत्री वाद्य
1. रिक्खी तम्बूरी 2. रिक्खी बॉक्स तानपूरा 3. रिक्खी–वीणा 4. रिक्खी–सुरनिखार 5. स्वर झंकार 6. रिक्खी नव चित्रा वीणा 7. रिक्खी हंस वीणा 8. रिक्खी श्रृंगार वीणा 9. रिक्खी शंकर गिटार 10. रिक्खी स्वर संगम ।[21]
रामशेष विश्वनाथ द्वारा निर्मित वाद्य ''ललिता वीणा''
दक्षिणात्य संगीत में वैज्ञानिक उपलब्धि की देन : ''सुनादिनी वीणा'' ।[22]

निष्कर्ष – तत् वाद्यों में आज भी संगीतज्ञों द्वारा निरंतर रुप से नित नए परिर्वतन किये जा रहे हैं। जो समय के बदलाव के साथ सा तत् वाद्यों के विकास के क्रम में तन्त्री की सामग्री के विकास के साथ–साथ वीणाओं में प्रयुक्त होने वाले अन्य सामग्री में भी विकास के स्पष्ट चिन्ह दिखते हैं। तन्त्री वाद्यों के निर्माण की सामग्री के साथ–साथ उनकी वादन सामग्री एवं

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

वादन विधि में भी परिवर्तन होते रहे हैं। वाद्यों पर सदैव गायन का प्रभाव रहा है जैसे–जैसे गायन शैलियों में परिवर्तन आता गया वादन सामग्री में भी निरंतर परिवर्तन होता रहा है। 18वी तथा 19 वीं शताब्दी के मध्य गत का प्रयोग तत् वाद्यो में वादन के अन्तर्गत किया जाने लगा जिसके परिणामस्वरुप तत् वाद्य जो पूर्व के कालों में संगीत में संगति वाद्य अथवा सहायक वाद्य के रुप में प्रयुक्त होता था। गत के प्रादुर्भाव के कारण तत् वाद्यों ने गायन से पृथक हो कर स्वयं का एक स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। आज हमारी संस्थागत शिक्षण प्रणाली के अन्तर्गत इसे ऐच्छिक विषय के रूप में ग्रहण किया जा चुका है। जिसमें हमें तन्त्री वाद्यों में सितार, सरोद, वॉयलिन मुख्यतः प्राप्त होते हैं। यदि इस वर्ग के कुछ और महत्वपूर्ण प्राचीन वाद्यों को भी संस्थागत शिक्षा के अन्तर्गत ग्रहण किया जाए तो हमारे कई अप्रचलित हो चुके वाद्य जैसे –वीणा के कई प्रकार, सारंगी के प्रकार आदि वाद्य प्रकाष में आएंगे। इससे हमारा भारतीय संगीत और अधिक समृद्ध तो होगा ही साथ ही साथ संस्थागत शिक्षा में आने से हमारे परमपरागत वाद्य वादकों को आजीविका का साधन भी प्राप्त हो सकेगा। साथ ही हमारे श्रेष्ठ वादकों का तथा हमारी प्राचीन धरोहर का भविष्य सुरक्षित हो सकेगा।

संदर्भ –

1 *साक्षातकार–शर्मा, महेश, ''वाद्य निर्माता'', जयपुर*
2 *मिश्र, डॉ. लालमणि, ''भारतीय संगीत वाद्य'', पृष्ठ–174*
3 *निगम, रेखा कुमारी, ''भारतीय संगीत का विस्तृत विवेचन'', पृष्ठ–77*
4 *साक्षातकार–शर्मा, महेश, ''वाद्य निर्माता'', जयपुर*
5 *मिश्र, डॉ. लालमणि, ''भारतीय संगीत वाद्य'', पृष्ठ–59*
6 *Allyn Miner, "Sitar and Sarod in the 18th & 19th Centuries" Page-46-51*
7 *वही*
8 *मिश्र, डॉ. लालमणि, ''भारतीय संगीत वाद्य'', पृष्ठ–59*
9 *''उस्ताद असद अली खाँ की सुश्री सुनीता का सलीवाल से बातचीत, कला वार्ता, मध्य प्रदेश कला परिषद्, भोपाल, अंक–1–2, वर्ष–1998, पृष्ठ–65''*
10 *भेंटवार्ता, श्री महेश शर्मा, स्थान सुर मंदिर, वनस्थली विद्यापीठ*
11 *(इंटरनेट से प्राप्त जानकारी के आधार पर) द्वारा स्टीवन लैड्सवर्ग, सैंटा फेएन. एम., कोलकाता, इण्डिया .*
12 *शर्मा, डॉ. योगिता, ''हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्री वाद्यों में परिवर्तन एवं प्रवृत्तियाँ'', पृष्ठ–40*
13 *वही, पृष्ठ–25, 33, 45.*
14 *लेखिका योगिता शर्मा की पं. मणिलाल नाग से इंटरनेट से प्राप्त हुई जानकारी के आधार पर*
15 *मिश्र, डॉ. लालमणि, ''भारतीय संगीत वाद्य'', पृष्ठ–55*
16 *योगिता जी द्वारा दिल्ली वाद्य निर्माता द योगिता जी द्वारा कोलकाता के सरोद निर्माता श्री दुलाल कांजी से साक्षात्कार, दिल्ली*
17 *जैन, डॉ. प्रभा, ''भारतीय संगीत के उन्नायक उस्ताद अलाउद्दीन खाँ'', पृष्ठ–82 ।*
18 *संगीत नाटक अकादमी(दिल्ली) द्वारा आयोजित ''वाद्य दर्शन'' भाग–2 में उस्ताद मुहम्मद अली खाँ द्वारा सोदाहरण वार्ता, दिनांक 26.07.2002, दिल्ली।*
19 *डॉ. योगिता शर्मा, ''हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में तंत्री वाद्यों में परितर्वन एवं प्रवृत्तियाँ'', पृष्ठ–168।*
20 *लेखिका पं. राधिका मोइत्रा के शिष्य श्री सोमजीत दास गुप्त(कोलकाता) से साक्षात्कार, दिनांक 28.03.2004 ।*
21 *वही।*
22 *वही।*